हरिःओ३म्

आत्मरामायण ॥

जिसको

भक्तमनरंजनार्थ

...परमहंसोदासीन शिरोवन्त श्रीस्वामी

प्रकाशानन्दजी महाराजके शिष्य

स्वामी शङ्करानन्दजी ने

निर्मित किया.

...कहो तातें भजो, भजो न एकहु बार ।

...न जातें कहो, सो तू भजो गँवार ॥

...बाद निवासि ब्रजरत्नभट्टाचार्य ने

शुद्धकिया

...। शिवलाल गणेशीलाल ने अपने

"...क्ष्मीनारायण" प्रेस में मुद्रितकर

प्रकाशित किया.

संवत् १९५५

मुरादाबाद.

॥ हरिः ओ३म् ॥

श्रीगुरुपरमात्मनेनमः

ल्मरामायण प्रारम्भः ॥

॥ अथ बालकाण्ड ॥

तका अभिन्न निमित्तो पादान कारण ॥

च्चिदानन्दस्वरूप सर्वान्तर्यामी
ालक श्रीरामचन्द्रजी महाराज
ने श्रीयुत महाराजाधिराज श्री
भानुकुलभानु परमभक्त श्रीदश-
राजके अवतार धारण करके भक्त-
महाराज रामचन्द्रजीने दुष्टोंका
और अपने भक्तोंकी रक्षा करी
ी सरकारको मैं अपना आत्म-
र कोट्यानुकोटि प्रणाम करता

हूं । तिन श्रीरामचन्द्रजी महाराजकी महिमा तो अकथनीय है । परन्तु विलासके निमित्त कुछ कथन कियाजाता है, कि–शरीर रूप एकरथ है । इन्द्रियरूप उसके घोडे हैं । और मनरूप रथी है, जिस मनरूप रथीके इन्द्रियरूप घोड़े स्वाधीन हैं, अर्थात्-जो मन श्रोत्र इन्द्रिय करके भगवत् कीर्तनका श्रवण करता है, और त्वचा इन्द्रियसे शीतोष्ण को सहके । करइन्द्रियसे सन्तोंकी सेवा और वाक्य इन्द्रियसे भगवत् गुणानुवादका गान करता है, इस प्रकार दशों इन्द्रियोंको वशमें किया है जिस मनने तिस मनका नाम दशरथ है, तिस मनरूप दशरथकी तीन स्त्री हैं । एक तो निवृत्तिरूप कौशल्या । दूसरी प्रवृत्ति रूप केकयी । और तीसरे जब मनरूप दशरथका भक्तिरूप सु-

१–सब जानत प्रभु प्रभुता सोई । तदपि कहे बिनु रहा न कोई ॥ अकथनीय यद्यपि गुण अहहिं । भक्ति विलास हेतु कछु कहहिं ॥

मित्राके साथ योग हुआ तभी भगवान् प्र-
सन्न होगये। तिस समय आकाशवाणी
हुई कि(वरंब्रूहि)अर्थात् हेराजन्!दशरथ! मैं
तुमसे बहुतही प्रसन्न हूं बर मांगो तब
राजा दशरथने प्रार्थना करी कि—हे भग-
वन्! आपने मुझदीनको कृतार्थ कियाहै तो
ऐसीही कृपा होनीचाहिये कि-जोमैं सदैवकाल
ही आपके दर्शनकिया करूं उससमय फिर
आकाशबाणीहुई कि-योगी लोगभी जबतक
समाधिमें स्थित रहते हैं तभीतक मुझे
को देखते रहते हैं, और समाधिसे उत्थान
होकर फिर व्यवहार में प्रवृत्त होते हैं उन
को भी तो मेरे सदैवकाल दर्शन नहीं होते।
इसकारण मुझको निरन्तर देखना अतिही
दुस्तरहै। किन्तु हाँ ज्ञानवान् मुझको सदैव
कालही देखता रहताहै, क्योंकि वोह स-
म्पूर्ण दृश्यादृश्यको ब्रह्मस्वरूपही जानता
है। इस्से वोह जहाँतहाँ मुझहीको देख-

ता है, इसी प्रकार जब तुमभी ज्ञान सम्पादन करोगे, तब तुमकोभी सदाही मेरे दर्शन होयंगे फिर राजा दशरथने प्रार्थनाकरी कि-हे नाथ ! ज्ञानवान् तो आपको निर्गुण और निष्क्रियरूपसे देखताहै । और मैं आपके सगुण रूपसे दर्शन करना चाहता हूं, इससे मुझदीनकीप्रार्थनास्वीकार होनीचाहिये तब फिर आकाशवाणी हुई कि-(एवमस्तु) अर्थात् ऐसाही होगा, यह सुनकर राजा दशरथ बहुत ही प्रसन्न हुये । और जब फिर मनरूप राजा दशरथका निवृत्तीरूप कौशिल्याके साथ सम्बन्ध हुआ तब ज्ञानस्वरूप भगवान् श्री-रामचन्द्रजी महाराज प्रगट हुये और दूसरे जब भक्तिरूप सुमित्रा के साथ सम्बंध हुआ तब विवेकरूप लक्ष्मण और विचार रूप शत्रुघ्न उत्पन्न हुये और जब प्रवृत्ती

१—देखि प्रीति सुनि वचन अमोले । एवमस्तु करुणानिधि बोले ॥

२—इस जीवात्माके विषयरूपी शत्रु हैं । तिन विषयरूपी शत्रुओं को विचारही नाश करता है, इसकारण विचाररूप शत्रुघ्न हैं ॥

रूप केकयीके साथ मनरूप दशरथका सम्बन्ध हुआ तब वैराग्यरूप भरतजी उत्पन्न हुये,क्योंकि-प्रथम तो जितेन्द्रिय पुरुषकी भोगोंमें प्रवृत्ती होतीही नहीं। और जो कदाचित् दैवयोगसे होभीजाय तो उसको प्रवृत्तीसे सुख नहीं होगा, किन्तु-वैराग्यही होगा।इसकारण प्रवृत्तीरूप कैकेयीसे वैराग्य रूप भरतजी उत्पन्न हुये। इस प्रकार मनरूप दशरथके ज्ञानस्वरूप रामचन्द्र। विवेक रूप लक्ष्मण। विचाररूप शत्रुघ्न और वैराग्यरूप भरत जिससमय चार पुत्र हुये, तब राजादशरथ परमसुखको प्राप्त हुये। और पंचकोशरूप अवध निवासी भी श्रीमहाराजके कमलवत् मुखारविन्दके दर्शन करके आनन्दको प्राप्त हुयेथे कि-इतनेहीमें विश्वासरूप विश्वामित्रजीभी आकर प्राप्तहुये, अर्थात्--मनरूप दशरथको यह पूर्ण निश्चय होगया कि-जो साक्षात् ज्ञानस्वरूप श्रीराम

चन्द्रजी मेरे यहां प्रकट हुये हैं तौ अब मेरे कल्याण होनेमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं तिनके आगमनको श्रवण करके राजा दशरथ ग्रामसे बाहर बिश्वामित्रजीको लेनेगये । और राजाने साष्टांग प्रणाम करके प्रार्थना करी कि हे भगवन्! आपने बड़ीही कृपाकरी कि-जो मुझ दीनको दर्शन दिये, क्योंकि-महात्मा लोगोंका विचरना गृहस्थियोंके कल्याणार्थही है और हे प्रभु! जिसनिमित्त आपका आगमन हुआ है वोह कार्य आपका पूर्ण हुआ क्योंकि-तन मन धन सम्पूर्ण पदार्थोंसे मैं आपकादास हूं, जैसी आपकी आज्ञा होगी वैसेही करूँगा इसप्रकार कहतेहुये राजा दशरथ बिश्वामित्र-जीको गृह (घर) में लेआये । और अति उत्तम आसनपर उपस्थित करके बिधिपूर्वक पूजन सेवन किया और प्रार्थना करी कि-हे नाथ! आपका किस निमित्त आगमनहुआ है? आज्ञा कीजिये तब बिश्वामित्रजीने कहा

कि-हे राजन्!श्रीरामचन्द्रजीके निमित्त मेरा आगमन हुआ है,क्योंकि-मैं जिस समय यज्ञ-रूप विष्णुका आवाहन करता हूं,तिस समय कामरूप मारीचादि राक्षस मेरे यज्ञमें विघ्न करते हैं इस्से मैं महा दुखी होकर तुम्हारी शरण आया हूं, अर्थात् श्री रामचन्द्रजी को मेरेसंग भेजदीजिये, यह वहांजाके उन राक्षसों का नाश करेंगे क्योंकि-इनके बिना उनके नाश करनेको कोई भी पुरुष समर्थ नहींहै।ऐसा सुनकर राजा दशरथ अतिशोक-कोप्राप्तहुए और कहनेलगेकि-हेमहाराज!यह वालक वहुतही छोटे२हैं।अस्त्र शस्त्र विद्याको जानतेही नहीं। तो फिरमैं आपके साथ इन-को कैसे कर दूं ? किन्तु हां मैं आपकी आ-ज्ञानुसार आपके साथ चलता हूं । परन्तु अज्ञानरूप रावणसे युद्ध करनेको मैं भी स-मर्थ नहीं हूं, क्योंकि-अब मैं वृद्ध होगया

१—कहँ निशिचर अतिघोर कठोरा। कहँ सुन्दर सुत परमकिशोरा॥

इससे रामचन्द्रआदि कुमारोंको आपके साथ नहीं भेजसक्ता इतनेहीमें वेदरूप वशिष्ठजीने कहा कि-हे राजन् क्षत्रिय होकर अपने वाक्य को क्यों उल्लंघन करते हो? और तुम इनकोबालक मतसमझो। इनकातोअवतारही राक्षसोंके नाश करनेको हुआहै, तब राजा-ने श्रीरामचन्द्र आदि चारों पुत्रों को बुलाकर विश्वामित्रजीके चरणोंमें डालदिया और यह कहा कि-हे नाथ! यह बालक आपही के चरणोंकी कृपासे मुझ दीनको वृद्धावस्थामें प्राप्त हुये हैं। सो यह बालक आपही के हैं। मेराइसमें कुछ नहीं। परन्तु यह अभी कुछ जानते नहींहैं। आपका इनसे क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? अच्छा जैसे आपकी इच्छा हो वैसाही कीजिये,तब राजाने मुनियोंकी आज्ञा माननाही परम धर्म्म समझकर रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीको[1] विश्वामित्रजीके साथकर

१—यद्यपि सबसुत प्राण कि नाईं। राम देत नहिं बनै गुसाईं॥

दिया। प्रथम तौ श्रीरामचन्द्रजीने मार्ग-
में शंकारूपी ताडकाको मारकर उसका
कल्याण किया, फिर विश्वामित्रजीके यज्ञ-
में प्राप्त हुए तब श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि-
हे विश्वामित्र! आपके यज्ञका विध्वंस करने-
वाला कामरूप मारीच राक्षस आपके चित्त-
हीमें स्थित है, अर्थात् कामनाका नामही
काम है, आप जो सकाम यज्ञ करते हैं कि-
मैं करता हूँ,मैं भोगता हूँ,यह कामनाही आपके
यज्ञमें विघ्नकरतीहै। क्योंकि-प्रथमतौनिष्का-
म कर्म्मोंमें विघ्नहोताही नहीं,और दूसरे जो
कदाचित् निष्काम कर्म्मोंका आरम्भ होकर
विघ्नसे छूटभी जावेंतौ प्रायश्चित्त नहीं होता,
क्योंकि-कामनाही विघ्नरूप है, इससे आप
कामरूप मारीच राक्षसको अन्त करणमें से
उठादीजिये।औरनिष्कामहोकरयज्ञरूपविष्णु
का ध्यान करो! और वास्तवमें विचार किया
जाय तौ निष्काम होनाभी कामनाहीहै,क्यों-

कि-कामनानाम इच्छाकाहै, और इच्छाकेविना कोईभी कार्य नहीं होता; इस कारण कामना का जय करना अतिही दुस्तर है, परन्तु-हाँ एक युक्तिहै, तिसकोधारण करोगे तब कामनाका जय होगा।

"नाहं कामो न मे कामः इति कामो विजीयते"

अर्थात्-न मैं कामना हूं और न मेरेमें कामना है इस प्रकार निश्चयसे कामनाका जय होता है, इसीभाँति आपभी अपने स्वरूपको देखिये कि-आपका स्वरूप कामनानहीं और न आपमें कामना है, क्योंकि-कामनामनमें होती है और आप मन के द्रष्टा हो और द्रष्टा द्रश्य-से पृथक्ही होता है, इस प्रकार जो आप अपने स्वरूपमें स्थित होंगे तव कामरूप मारीचका जय होगा। ऐसा सुनकर विश्वा-मित्रजीने जव निष्कामता धारण करी। अर्थात्-अपने निष्क्रिय स्वरूपमें स्थित हुये तभी यज्ञ पूर्तीका शंख वजा और देवता पुष्पों-

की वर्षा करते हुए श्रीमहाराज रामचन्द्रजी-कीजयहो!जयहो!!जयहो!!!ऐसाशब्द कहने लगे।और विश्वामित्रजीभी अति हर्षको प्राप्त हुये। इसप्रकार कुछ दिन तक श्रीरामचन्द्रजी ऋषियोंको दर्शन देते रहे, परन्तु-जब श्री-महाराज अयोध्याजीको चलने लगे तब विस्वामित्रजीने प्रार्थनाकरी कि-हे नाथ! य-हांसे थोडीही दूरपर विदेहरूप जनक एक राजा है तिनकी शांतिरूपिणी सीतापुत्री है तिसके बिवाहका स्वयम्बर रचागयाहै।तिस-स्वयंबर में बहुत २ शूरवीर राजा इकट्ठे हुयेहैं। औरराजाजनककी यह प्रतिज्ञाहै कि-जो कोई पुरुष अहंकाररूप धनुषको तोड़ेगा उसके साथ शान्तिरूपिणी सीताका विवाह करूंगा। सो उसके यज्ञको आपभी सुशोभितकीजिये, और अपने पवित्र दर्शनोंसे जनकपुर वासि-योंको कृतार्थ कीजिये॥

ऐसी मुनिकी आज्ञाको श्रवणकरके श्रीराम

चन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित जनकपुरकोवि-श्वामित्रजीके साथ चलदिये। मार्गमें तपरूप गौतम ऋषि की स्त्री क्षमारूपिणी अहिल्याको निजपद प्राप्त करके श्रीरामचन्द्रजीजनकपुरमें प्राप्तहुए तिस समय जनकपुरवासीअर्थात्-जनकनाम पिताकाहैऔरपिताकारणकानाम है और सबका कारण अर्थात्-जनकईश्वरहै। तिस जनकरूप ईश्वरका पुर अर्थात्-स्थान संसारहैंइसवास्तेसंसाररूपजोजनकपुर तिस जनक पुरके सम्पूर्ण पुरुष ज्ञानस्वरूप रामचन्द्रजीके दर्शन करके अति आनन्दको प्राप्त हुए, और उन्होंने मनुष्य शरीरका पाना भी सफल समझा और भगवान्से प्रार्थना करने लगे कि-हेनाथ! इन्हींज्ञानस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीको शान्तिरूपिणी सीता मिले-क्योंकि सीताजीके योग्यवर येही हैं; अर्थात्-ज्ञानके विना शान्ति नहीं होती॥ इसप्रकार जनकपुर वासियोंकी प्रार्थना सुनकर तिससमय

देववाणी हुई कि-(तथास्तु)अर्थात्-जैसी तुमलोगोंकी इच्छाहै,तैसाही होगा॥ ऐसे शब्दको सुनकर वोह सब नरनारी आनन्दित हुये। और दिन२ प्रति श्रीरामचन्द्रजी के जानेसे जनकपुरमें नित्यनये मंगल शकुन होनेलगे॥ तब श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी विश्वामित्रजीके साथ यज्ञशालामें सुशोभित हुये। कि-जहाँ बड़े२ प्रतापी सम्पूर्ण राजा स्थित थे। तिससमय उस यज्ञस्थानकी ऐसी शोभा होगई कि-जैसे चन्द्रमाके चारोंओर बृहस्पति आदि नक्षत्रोंके स्थित होनेसे रात्रीकी शोभा होजाती है। तहां सब राजा अपने २ बल पराक्रमको हार गये॥ परन्तु-अहंकाररूप धनुष किसीसे भी नहीं टूटा। क्योंकि-अहंकारने तो सबको दबाही रक्खा था। अर्थात्-सबराजाओंकी ऐसी वृत्तीथी कि-हम बड़ेही शूरवीर और प्रतापी हैं। और धनुषको हमहीं तोड़ेगे इससे हमारे

अतिरिक्त सीताके योग्यवर और कोई भी नहीं है। तौ भला फिर वोह अहंकारसे बली किसप्रकार हो सक्ते हैं ? इस भांति जव राजा जनक ने देखा कि-अहंकाररूप धनुष किसी-से भी नहीं टूटा तव राजाने सभामें स्थित होकर कहा कि-बस अब मुझको प्रतीत हो गया प्रथिवीपर कोई भी शूरवीर नहीं रहा॥[1] अर्थात्-अहंकारने सवकोही ग्रस लिया। तव लक्ष्मण जी उठकर कहने लगे अरे जनक! जिस सभा में श्रीमहाराज ज्ञानस्वरूप रामचन्द्रजी सुशोभित हो रहे हैं ॥ उस सभा में अहंकार कहां ठहर सक्ता है॥ भला सूर्य्य-के सन्मुख रात्री कैसे रहसक्ती है॥ और प्रथम तौ श्रीमहाराजके चरणों का दास मैं विवेक रूप लक्ष्मणही महाराज की आज्ञानुसार सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको गेंद[2] की नाईं तोलसक्ता हूँ ॥ अर्थात् सत्यासत्यका विचार करना तो

१—अब जनि कोउ माषै भटमानी । वीर विहीन मही मैं जानी ॥
२—जो राउर अनुशासन पाऊं । कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊं ॥

मेरा स्वरूप ही है तौ फिर असत्य अहंकार मेरेही सन्मुख नहीं स्थित होसक्ता बस अब आप ऐसा नहीं कहैं कि-कोई भी शूर वीर नहीं रहा तब लक्ष्मण जी के एसे वाक्य को श्रवणकर और उनकी बाल्यावस्थाको देखकर सबराजा आश्चर्य्य युक्त हुये। और श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीका हाथ पकड़-कर बैठाललिया। फिर आप उठकर सभा-को प्रकाशित किया। जब ज्ञानस्वरूप श्री-रामचन्द्रजी महाराजका उदय हुआ तभी अहंकाररूप धनुष अपने आपही छिन्नभिन्न होगया और शान्तिरूपिणी सीताजीने श्री-रामचन्द्रजी के गलेमें जयमाला डालदी, और उसी समय देवता पुष्पोंकी वर्षा करने लगे॥ जय २ शब्द होनेलगा जो राजा कि धर्मात्मा और भक्तथेवोह सब श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन करके कृतकृत्य होगये। तथा जो दु-ष्टात्मा थे वोह सब उलूककी नाईं छिपगये

तिस समय प्रेमरूप परशुरामजीभीक्रोधकर-
के आये क्योंकि-उनको ऐसा आश्चर्य्य हुआ
कि दुष्टोंको नाश करनेवाला जो अहंकाररूप
महादेवजीका धनुष तिसको तोड़नेवाला
कौन प्रगट होगया? ऐसा विचार करके क्रोधि-
त हुए २ परशुराम जी जनक पुरमें आये
तिनके क्रोधको देखकर जनकजीके सहित
सम्पूर्ण राजा कांपने लगे तब लक्ष्मण जीने
कहा कि-हे ब्राह्मण! शान्त हो, शान्त हो, शान्त
हो, आपका स्वरूप तो प्रेम है इस से आप
को क्रोध शोभा नहीं देता ऐसासुनकर मुनि
औरभी क्रोधित हुये। तब श्री रामचन्द्रजीने
लक्ष्मण जी को शान्त करके परशुरामजी से
कहा कि-हे नाथ! यह बालक आपके प्रभाव
कोनहींजानता हैमैंब्राह्मणोंसेबहुतही भयखा
ता हूं और ब्राह्मणोंसे डरने वाला पुरुष नि-
र्भय पदको प्राप्त होता है क्योंकि-ब्रह्मवित्
भृगुजी के चरण का करुणारूपी चिन्ह मेरे

हृदयमें अभी तक स्थित है, जिस समय श्री-रामचन्द्रजीने चिन्ह दिखाया तब परशुराम-जी प्रेमरूप निजस्वरूपको प्राप्तहोकर आन-न्द रूप वनको सिधारे, तिससमयराजाजनक और सीताजीके सहित सम्पूर्ण जनकपुर-वासी परमानन्दको प्राप्त हुए, और राजा जनकने विवाहका दिवस नियत करके श्री-महाराज दशरथजी को पत्र लिखा तिसपत्र-में श्रीरामचन्द्रजीका धनुष तोडना और सीता जीके जयमाला डाल देने को देखकर राजा दशरथजीके सहित अवधपुर वासी संपूर्ण पुरुष अतिहर्षको प्राप्त हुए और राजा दशरथ वेदरूप वसिष्ठजीके सहित अति शोभायमान बरातको लेकर जनकपुरमें प्राप्त हुए ॥ और जनकपुरकी अत्युत्तम सुन्दरताको देखकर अवधपुर निवासी बरा-तीभी हर्षको प्राप्त हुए ॥ और श्री-रामचन्द्रजीभी लक्ष्मणजीके सहित आ-

नकर यथा योग्य प्रणामकरके सबसे मिले और मुनिवर वसिष्ठजीने परम सुखदायक (मंगलरूप) विवाहका समय नियत करके अति मनोहर वेदी रची । उस समय राजा विदेहरूप जनकने विचार किया कि–ऐसे सुन्दर राजकुमार और श्रीमहाराज दशरथ की समान समधी मिलना अति दुस्तर है । इससे येही उचितहै कि–भ्राता कैवल्यरूप कुशकेतुकी तीनों पुत्रियोंका भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्नजीकेसाथमें विवाह करदियाजाय। ऐसा विचारके भ्राता कुशकेतुके सहित व-शिष्ठजी और राजा दशरथजीसे प्रार्थनाकरी वशिष्ठजीने उनकेवाक्य को स्वीकार करके तीनवेदी और भी रचीं ॥ एक वेदीपर तौ ज्ञान स्वरूपश्रीरामचन्द्रजीऔरशान्तिरूपिणीसी-ता शोभायमान थीं॥दूसरी वेदीपर विवेकरूप लक्ष्मणजी और नम्रतारूपिणी उर्मिला तीस-रीपरवैराग्यरूपभरतजी और विरतिरूपिणी

माँडवी तथा चौथीवेदीपर विचाररूप शत्रुघ्न और शमतारूपिणी श्रुतिकीर्ति स्थितहोसुशोभितहोरहे थे॥और सन्मुख वेदरूप वशिष्ठजी आदिक लेकर सम्पूर्ण महर्षि और एकओर मनरूप राजा दशरथ तथा विदेहरूप जनक जीसे आदिलेकर बहुतसे महीपालस्थितथे और उस समय सब मंगल शकुन सुफल होनेके निमित्त आकर प्राप्तहुए तिस समयकी महिमाको मैं तो क्या कहसकूं ॥ किन्तु सरस्वती और शेषभी देखकर लज्जित होते थे ॥ इसप्रकार आनन्द पूर्वक जब विवाह होचुका तब राजा दशरथ और जनकने अमोल रत्न दान किये । अर्थात्—जैसी इच्छासे वहाँ कोई गया वोही इच्छा उसकी पूर्ण हुई ॥ और मुझ दीनकोभी अभेद भक्तिरूप भिक्षा उसी दरबार से प्राप्त हुई है फिर राजा जनकनेसम्पूर्ण बरातियों का यथायोग्य आदर और सत्कार करके बिदा

किया । और राजा दशरथजी अतिहर्षित होते हुए अवधपुरमें आके प्राप्त हुये ॥ और पंचकोशरूप अवध निवासी पुरुषोंकोभी नित्य नये आनन्द मंगल होनेलगे । क्योंकि सतरूप दशरथ इधर देखैं तौ ज्ञानस्वरूप रामचन्द्र हैं और उधर शान्तरूपिणी सीता । और इधर विवेकरूप लक्ष्मण और उधर नम्रतारूपी ऊर्मिला । इधर वैराग्यरूप भरत और उधर विरतिरूपिणी माँडवी । इधर विचाररूप शत्रुघ्न और उधर शमतारूपिणी श्रुतिकीर्ति है ॥ इसप्रकार चारों कुमारोंकी अद्भुत शोभाको निरखर आनन्द लूटते रहे ॥ तिससमय देवताओंने विचार किया कि श्री रामचन्द्रजी का अवतार तौ राक्षसोंके नाश के निमित्त हुआहै सो यहाँ कुछ औरही लीला होने लगी

॥ इतिबालकाण्डसमाप्त ॥

१—जब से राम ब्याह घरआये । नितनवमंगल मोदवधाये ॥

॥ अथअयोध्याकाण्ड ॥
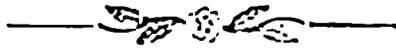
तब मनरूप दशरथ मोहित होकर प्रवृत्ती रूपिणी केकयीसे कहने लगे कि-मैं तुमसे बहुतही प्रसन्न हूँ तुम कुछ मांगो ॥ ऐसा सुन्तेही रानी की बुद्धि पर ऐसे पत्थर पड़े कि-उसने कहा हेस्वामी ! जो मैं मांगूं सोई मिले, राजाने कहा मांगो । रानी कहने लगी हेनाथ ! प्रथम तौ आप ज्ञानस्वरूप रामचन्द्रजी कोचौदह वर्षका वनवास दीजिये क्योंकि-जब तक आप मुझ प्रवृत्तिरूप केकयी में आसक्त हैं तबतक ज्ञान आपको शोभा नहीं देता ॥ इस कारण आप ज्ञानस्वरू राम चन्द्र जी को त्यागकर बैराग्यरूप भरतजी को राज दीजिये । अर्थात् जबतक आप बैराग्यादि साधन सम्पन्न नहीं होंगे तब तक ज्ञानके अधिकारी नहींहोसक्के ऐसे महा भयंकर शब्द को सुन के और अपनी प्रतिज्ञा को विचार

कर राजा दुःख के समुद्र में गोते खाने लगे॥ और इधर श्रीरामचन्द्रजी को भी मालूम हुआ कि-तुमको बनमें जानेकी राजा ने आज्ञा दी है। तिस आज्ञाको परम प्रिय जानकर अति हर्षसे रणवास में आये। और लक्ष्मणजीसे कहा कि-हे भाई! हमतो बनको जाते हैं। तुम पीछे श्रीमहाराज दशरथ जी और सब माताओं की सेवा करना॥ लक्ष्मण जीने कहा कि-हे प्रभो! मैं तो आप का सेवक हूं मुझको न त्यागिये क्योंकि मैं तो विवेकरूप लक्ष्मण आपके जानेसे पहि-लेही अन्तःकरण शुद्धिके हेतु प्राप्त होता हूं तदनन्तर आप ज्ञानस्वरूप रामचन्द्रजी उद-यहोते हो॥ इस से मुझ दास को चरणोंही में रखिये॥ तब फिर श्रीरामचन्द्रजीने सीता जीसे कहा कि तुम श्रीमहाराज और माता जीकी आज्ञानुसार रहना और सेवा करना मुझको श्रीमहाराज कीआज्ञा बन जानेकी

हुई है ॥ सीताजी ने कहा कि-हे ईश्वर ! जैसे सूर्य्यसे प्रकाश, और चैतन्यसे चैतन्यता तथा मणि से लाली पृथक् नहीं होसक्ती इसी प्रकार मैं भी आप से भिन्न नहीं रह सक्ती हूं। क्योंकि-जहां ज्ञान है। वहीं शांति है। और जहां शांति है। वहीं ज्ञान हैं। फिर भला मेरा त्याग आप कैसे करसक्तेहैं ॥ इस प्रकार कहती हुई प्रेम में मग्न होकर सीता जी पृथिवी की ओर देखने लगीं। और नखों से पृथिवीको कुरेदने लगीं। तब अन्तर्यामी भक्तवत्सल श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि-अच्छा तुम दोनों माता पिताकीआज्ञा लेकरभले ही चले चलो मेरीकुछ हानि नहीं जब लक्ष्मणजीने अपनीमाता भक्तिरूपिणी सुमित्राजी से श्रीरामचन्द्रजी के साथ वन जानेकी प्रार्थना करी। तब सुमित्राजी ने कहा। हे पुत्र! विवेकरूप लक्ष्मण तुम्हारे बड़ेही भाग्य हैं कि जो रघुनाथजी के चरणोंमें तुम्हारा प्रेम

है । और मैं तुम से बहुतही प्रसन्न हूं तुम जाओ तुम्हारे पिता तौ श्रीरामचन्द्र जी हैं ॥ और माता सीताजी हैं । ऐसा जा कर बन में उनकी भलीप्रकारसे सेवा करना । जब श्री रामचन्द्रजी लक्ष्मण और सीताजी के सहित सब माताओं और पिताजी को प्रणाम करके बनजानेकोउद्दितहुये तभीमनरूप दशरथ कामन्त्री सुकर्मरूपसुमन्त अखण्डरूपरथपर आरूढकरके श्रीमहाराजको निर्भयरूपबनमें लेचले तव अवधपुरी में हाहा कार मच गया और श्रीराम चन्द्रजी बनको सिधारे आगे ब्रह्मविद्यारूप तमसानदी के तीरपर पहुँचे ॥ वहां एक जिज्ञासारूप केवट स्थित था । वोह श्रीरामचन्द्रजीको दूरहीसे देखकर भागा और गद्‌ गद्‌ होके चरणोंमें गिरपड़ा-यहांतक आनन्दमें मग्न हुआ कि-तन मन की सुधही भूलगया । तब श्रीरामचन्द्रजीने उसको उठाकर कण्ठसे लगालिया ॥ और

वोह केवट कहने लगा कि-हेनाथ! मेरी नौका वहुत श्रेष्ठ और नवीन है, आप इसमें बैठिये मैं आपको पार लेचलूंगा इसप्रकार कहतेहुये श्रीरामचन्द्रजीको घाटपर लाके स्थित किया और अपने कुटम्बियोंको भी बुला-कर श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनोंसे पवित्र कर-दिया जब श्रीरामचन्द्रजी नौकापरचढ़नेलगे तब उस मल्लाहने कहा कि—हे स्वामी! मैं जबतक आपके चरणोंको न धोलूं तबतक नौकामें न बैठने दूंगा और जो कदाचित् आप बैठभी जायंगे तौ पार नहीं लगाऊंगा क्योंकि—पहिले एक पत्थरकी शिला आपके चरणोंकी रजके स्पर्शसे आकाशको उड़गई है इसीप्रकार जो मेरी नौकाभी उड़गई तौ मैं काहेसे पैदा करूं खाउंगा॥ इसभाँति प्रे-ममें लिपटे हुये वाक्योंको श्रवणकर करुणा के समुद्र हँसकर कहनेलगे कि अच्छा जैसे तुम्हारी खुशीहो वैसेही करो! तबउस मल्लाह-

ने अपने कठउमें श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण और सीताजीके सहित चरण धोकर तिस चरणामृतको पिया और अपने सम्बन्धियों को भी पिलाकर कृतार्थ किया त… उस जिज्ञासारूप मल्लाहने धारणारूप नौकामें बैठाकर श्रीरामचन्द्रजीको गंगाजीके पार उतार दिया । तिस समय श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न हुए । और मल्लाहको कुछ उतराई देनाचाहा परन्तु जब सीताजी स्वामीकी इच्छा जानकर एक मुद्रिका निकालकर देनेलगीं तब केवट लज्जाको प्राप्त होकर गद्गदहोके श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें गिरपड़ा और यह कहा कि-हेनाथ! आज मैंने आपके चरणों की कृपासे क्या कुछ नहीं पाया । अर्थात् पाने योग्य जो पदार्थहै सो मुझको स्वाभाविकही मिलगया भला इससे अधिक और क्या होगा कि-आपके जिस स्वरूपको देखने के निमित्त महात्मालोग लाखों करोड़ों वर्षोंतक

तप किया करतेहैं उस स्वरूपको मैंने आज इन नेत्रोंसे देखा ॥ ऐसा कहकर वोह फिर श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें साष्टांग गिरपड़ा और श्रीरामचन्द्रजीनेभी हृदयसे लगाकर कहा कि—हम तुमसे बहुतही प्रसन्न हैं तुमने हमको पार[1] लगा दिया है ॥ इसप्रकार कहकर श्रीरामचन्द्रजी उपरमारूप भरद्वाजजीके स्थानपर प्राप्त हुये कि-जो बहुत दिनसे श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनोंकी इच्छा करके तप कररहे थे ॥ वोहदूरहीसे श्रीरामचन्द्रजीको देख कर लेनेकोगये जब श्रीरामचन्द्रजीने प्रणामकिया तभी मुनिने कण्ठसे लगालिया और आसन पर लेजाके पूजन सेवन कर कहने लगे कि हेनाथ!आज आपके दर्शनोंसे मेरा योग जप तप सब सुफलहोगया ॥ इसप्रकार आनन्दसे

१--भला इस मल्लाहके भाग्यकी बड़ाई कौनपुरुष करसक्ता है कि जो संसार समुद्र से पार करनेवाले भक्त वत्सल श्रीरामचन्द्रजी महाराज अपने श्रीमुखसे जिसके प्रति यौं कहतेहैं कि--तूने हमको पार लगादिया ऐसी दयालुताको देखकर चुपही होना पड़ताहै कुछ कहा सुना नहीं जाता॥

विलास कर ते हुए वहाँ रात्री व्यतीत करके प्रातःकाल त्रवेनीजीमें स्नान किया अर्थात् जैसे यमुना और सरस्वती श्रीगंगाजीमें लय होजाती हैं। और आगे केवल श्रीगंगाजीकी ही एक धार चलती है ॥ इसीप्रकार योगी लोग इडा और पिंगला को सुषुमनामें लय करके सदैव काल निरन्तर सुषुमनाही का प्रवाह चलाते हैं ॥ तिस त्रवेनीमें स्नान करके श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण और जानकी जीके सहित वहां प्राप्त हुये कि जहां ब्रह्मरूप वाल्मीकजी श्रीमहाराजके दर्शनाभिलाषी स्थित थे ॥ वाल्मीकजीने आश्रम परले-जाकर परम आदर पूर्वक उपस्थित किया ॥ और श्रीरामचन्द्रजीने प्रणाम किया तब वाल्मीकि जीने कहा कि हे जगदीश्वर ! आज आपने मेरा जन्म सुफल करदि-या । क्योंकि—जैसे दीपक घटादि सम्पूर्ण पदार्थोंको प्रकाश करताहै । और घटादि

पदार्थ दीपकको नहीं प्रकाश करसक्ते इसी प्रकार आप सबके द्रष्टा हो आपको कोईभी नहीं जानसक्ता सो जो मन वाणीका अविषय आपका स्वरूप है ॥ उस स्वरूपके आज मुझको दर्शन हुए इससे मैं कृतकृत्यहोगया ऐसा सुनकर श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे कि हेमुनि! अब आप वोह स्थान हमको बतलाइये कि जहाँपर हमारे रहने करके कोईभी महात्मा दुःख नहीं पावें क्योंकि जिस पुरुषसे सन्त महात्मा दुःख पाते हों वोह पुरुष मुरदे से भी मुरदाहै। इस्से अत्यन्त निर्विघ्न स्थान हमको दीजिये वहाँ हम बास करें ॥ मुनिवर ने कहा कि-जहाँ आप नहों वहाँ आप रहिये । अर्थात् आप तो सर्वत्र व्यापक हैं फिर

१--अब जहँ राउर आयसु होई । मुनि उद्वेग न पावहि कोई ॥
मुनि तापस जिनसे दुख लहई । ते नरेश बिन पावक दहई ॥
असजिय जानि कहिये सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्र सहित तहँ जाऊं ॥
२--दोहा--पूछेउ मोहि कि रहहुं कहँ , मैं पूछत सकुचाउं ॥
जहँ न होहु तहँ देहुँ कहि , तुम्हहि दिखावहुँ ठाउँ ॥

मैं आपको स्थान कहां बताऊं । परन्तु हां आपने जो प्रश्न किया है । उसका उत्तर देना अवश्यही उचित है॥ हेपतितपावन ! यहां से थोड़ीही दूरपर एक स्थान चित्रकूट है । वहां पर आप निवास कीजिये । अर्थात् कूटनाम लोहेकी अहरन का है । और चित्र नाम स्वरूप का है । जैसे लोहेको अहरनके ऊपर धातु के अनेक पात्र बन कर चले जाते हैं । परन्तु अहरन ज्यों की त्योंही रहती है॥ इसी प्रकार अनेक व्यवहार जिस पुरुष करके सिद्ध होते हैं । और वह पुरुष अपने स्वरूप से चलायमान नहीं होता । तिस पुरुष का नाम चित्रकूट है, अर्थात् (कूट) अहरन के नाईं हो (चित्र) स्वरूप जिसका तिस पुरुष का नाम चित्रकूट है । तिस पुरुषरूप चित्रकूट में आप निवास कीजिये । ऐसी मुनि की आज्ञाको धारण करके ज्ञानस्वरूप श्री-रामचन्द्रजी चित्रकूट में जाकर स्थित हुए॥

और इधर राजा दशरथ ने श्रीरामचन्द्रजी के बन जानेको जान शरीर को त्याग दिया। अर्थात्–राजा मोक्षको प्राप्त होगये। क्योंकि फोटू उतरनेके समय जैसे-जिस पुरुषके अंग होतेहैं। वैसाही उसका अक्स उतर आताहै॥ इसी प्रकार शरीर छूटने के समय जैसीभावना जिसकी होती है। वैसीही उसकी गतिहोतीहै इस वास्ते राजादशरथने श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करतेहुए देहको त्याग कियाथा इससे वोह रामरूपही होगये ॥ कि इतनेहीमें भरत और शत्रुघ्नजीकोभी अपने नानाके यहां ज्ञात हुआ कि--श्रीरामचन्द्रजी तो लक्ष्मण और सीताजीके सहित बनको गये । और उनके बियोगमें राजाने शरीरको त्यागदिया। तभी भरत और शत्रुघ्नजीने अयोध्याजीमें आकर राजाका विधिपूर्वक सब क्रियाकर्म किया ॥ और अयोध्या निवासियोंको धैर्य्य दिलाकर श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन निमित्त चित्रकूटको

यात्रा करी । तिस समय भरतजीकी यात्राको जो कोई भी सुनता वही चलदेता था इसवास्ते साथमें बहुतही भीड़भाड़ होगई और जिस २ वृक्षके तले श्रीरामचन्द्रजीने निवास कियाथा उन सब वृक्षोंको प्रणाम और उनकी स्तुति करतेहुये भरतजी उपरमारूप भरद्वाजजीके स्थानपर पहुंचे। और भरद्वाजजीको प्रणाम करके स्तुति करनेलगे तब उपरमारूप भरद्वाजजीने प्रेमपूर्वक उपदेश किया कि हे भरतजी ! आप बड़ेही भाग्य शील हैं कि जो रघुनाथजीमें आपकी प्रीति है परन्तु-अब आपको स्वधर्मानुष्ठानही करना योग्य है । अर्थात्-पिताकी आज्ञा माननाही परमधर्महै जैसे श्रीरामचन्द्रजीको बनजाने की आज्ञाथी वोह बनको गये इसीप्रकार आपको राज्य करनेकी आज्ञाहै आप राज्य कीजिये ॥ ऐसा सुनके भरतजी अतिसंकोच को प्राप्त होकर कहनेलगे ॥ कि हे मुनि !

शार्दूल आपतो मेरे हितकारी हैं ॥ इसमें किं-
चित् भी संदेह नहीं परन्तु मुझ वैराग्यरूप
भरतकी ज्ञानस्वरूप रामचन्द्रजीके विना
शोभा नहीं ॥ जैसे दुग्धकी शोभा मिश्रीसे
है । इसीप्रकार वैराग्यकी शोभा ज्ञानसे है ।
और जैसे राखके सम्बन्धसे दुग्धकी शोभा
नहीं ॥ इसीप्रकार राज्यसे मुझ वैराग्यरूप
भरतकी शोभा नहीं । मेरी शोभा तो केवल
श्रीरामचन्द्रजीसेही है ॥ इस भांति प्रेमसे युक्त
वाक्योंको सुनकर मुनि अति हर्षित हुए ॥ तब
मुनिने कहा कि–हे भरतजी ! तुम्हारे समान
शूर बीर और धर्मात्मा पुरुष तुम्हीं हो, अच्छा
अब आप जाओ चित्रकूट पर श्रीरामचन्द्रजी
निवास करते हैं, उनके दर्शन करो ॥ तब भरत
जी त्रिबेनीमें स्नान करके चित्रकूटको चले ॥
जब लक्ष्मणजीने सेनाके संयुक्त उनको आते
हुए देखा । तब श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगे
कि-हे नाथ ! भरतजीको राज्य मद होगया है
तिससे आपकेसाथ युद्धकरके अकण्टकराज्य

करनेके निमित्त सेना लेकर आये हैं ॥ श्रीराम चन्द्रजीने कहा कि-हे लक्ष्मण ! राज्यमद उस पुरुषको होता है कि-जिसकी राज्यमें आसक्ति होती है । भला वैराग्यरूपभरतको कभी राज्य मद होसक्ताहै? कदापि नहीं होगा। किंतु भरत तो हमारा साधक है। अर्थात्-जिसपुरुष को प्रथम वैराग्यही नहीं होगा उसको ज्ञान नहीं होसक्ताहै । इससे भरतजीको राज्यमद नहीं हुआ किंतु प्रेममें व्याकुल हुये आते हैं । कि इतनेहीमें भरत और शत्रुघ्नजी श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में आय पड़े । और श्रीराम चन्द्रजीनेभी यथायोग्य सबका आदर सत्कार किया और भरतजीको हृदयसे लगालिया । इसप्रकार कुछकाल तक आनन्दसे विलास करके श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञानुसार श्रीमहाराजकी दयारूप पादुकाको शिरपर धारणकर के भरतजी चले ॥

अयोध्याकांड समाप्त.

॥ अथ आरण्य काण्ड ॥

तत्पश्चात् कर्मरूप जयन्तने बिचारकिया कि श्रीरामचन्द्रजीने राज्यरक्षाका कर्तृत्व तो अपनेमें आरोपण नहीं किया परन्तु सीताजी कीरक्षाका तो कर्तृत्व स्वीकारकरनाही होगा अर्थात्-उसने यहजाना कि यह ज्ञानस्वरूप नहीं हैं। ऐसे मोहको प्राप्त होकर। वह अभिमानी जयन्त सीताजीके चरणमें चोंचमार कर भागा। तब दयालु श्रीरामचन्द्रजीने सर्वात्मा जानकर अक्रियरूप बाण छोड़ा अर्थात् कुछभी फुरना नहीं हुई। वह जयन्त उसी अक्रियरूप बांणसे ब्याकुल हुआ२सर्वत्रही फिरा परंतु किसीनेभी उसकी रक्षा नहीं करी ॥ तब फिर उन्हीं श्रीरामचंद्रजीका आश्रय देखकर उनकी शरण आया क्योंकि सिवाय उनके और कोईभी सहायक नहीं होता

१—सीता चरण चोंच हत भागा। महामन्द मति कारण कागा॥

दीनवन्धु श्रीरामचन्द्रजीने जयंतको अंग भंग करके छोड़दिया ॥ तभीसे सकामकर्म अंगभंगहै अर्थात्-सकामकर्म करके केवल व्यवहारही की सिद्धि होती है। किन्तु पर-मार्थ की नही होती॥इस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी आनन्द पूर्वक विलास करते हुये अकर्म रूप अत्रिमुनिके आश्रमपर पहुँचे। जब अ-त्रिमुनिने विचार किया कि-इन ज्ञान स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी ने मुझ अकर्मका त्यागनहीं किया इस्से मैंभी सुफल होगया ऐसाविचार कर श्रीमहाराजको लेने आये और लेजाकर विधी पूर्वक पूजन सेवन करके स्तुति करने लगे कि हे स्वामी! मैं अकर्म तौ आपके आ-श्रयही हूँ तो फिर मैं आपकी स्तुति क्या करसकूं ॥ और इधर अकर्मरूप आत्रिमुनि की स्त्री धृतीरूप अनुसूयाजीभी सीताजी को प्रेमपूर्वक पातिव्रतधर्मका उपदेश करने लगीं कि हे जगदम्बा ! तुम ज्ञानस्वरूप

श्रीरामचन्द्रजीसे पृथक् नहीं हो । अर्थात् पतिव्रता स्त्रियोंका यही धर्म्म है कि-अपने पतिके सुखके साथमें सुख और पतिके दुःखके साथमें दुःख मानना और श्रीराम-चन्द्रजी तो ज्ञानस्वरूप सच्चिदानन्द हैं कि जिनके नामहीसे सम्पूर्ण दुःख निवृत्त हो-जाते हैं ॥ इसवास्ते तुम अपने चित्तमें ऐसा विचार नहीं करना कि-इनको बनमें आनेका दुःख है । क्योंकि-यह तो अपने भक्तोंके क-ल्याणार्थ बनमें विचरते हैं ॥ ऐसा सुनकर सीताजीने प्रणाम किया । और अतिहर्षको प्राप्तहुई इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजी बिलास करते हुए शमरूप सुतीक्ष्ण ब्राह्मणके स्थान को पवित्र करके अद्वैतरूप अगस्तमुनिके स्थानपर प्राप्तहुए ॥ तब अगस्तमुनिने श्री-महाराज रामचन्द्रजीके दर्शनको अपने जप तपका फल समझा क्योंकि—कर्म उपासना-दि सबका फल ज्ञान है सो ज्ञानस्वरूप श्री-

रामचन्द्रजी स्वाभाविकही घरमें बैठे बिठाये आगये॥इसप्रकार गद्गदभावकोप्राप्त होकर स्तुति करने लगे कि-हे स्वामी!आप तोअद्वैतरूप तन्तुपटवत् सर्वत्र व्यापक हो तो फिर आपकीस्तुति कौनकरसक्ताहै इसप्रकारस्तुति करके श्रीरामचंद्रजीकोकंठसेलगालिया और श्रीरामचन्द्रजीनेभी प्रणाम करके पूछा कि–हे मुनिवर! यहां कोई निर्विघ्न स्थान बतलाइये कि जहांपर हम कुछकाल बास करें। तब अद्वैतरूप अगस्तजी हँसकर बोले कि आपतो ब्रह्महो । अर्थात्–सर्वत्र व्यापकहो मैं स्थान आपको कहां बतलाऊं। परन्तु आपनेजो नरलीला करीहै कि–जिसको देख कर बुद्धिवान् पुरुषतो आनंदित होते हैं। और मूढ़ मोहको प्राप्त होजाते हैं। इससे कुछ कहताहूं कि हे नाथ! यहांसे थोड़ीही दूर पर पंचवटी एक स्थान है आप वहां निवास कीजिये । अर्थात् शब्द-स्पर्श-रूप-रस

गन्ध-यह जड़रूप पांचबटके वृक्ष जिस पुरुषके चित्तको साया कररहे हैं, कि—अपने में आसक्त करके दुःख नहीं देते जिस पुरुष को तिस पुरुषके चित्तका नाम पंचवटी है॥ हे स्वामी! आप उस पुरुषके पंचवटीरूप चित्तमें सुशोभित हूजिये॥ इसप्रकार सुनकर श्रीरामचन्द्रजी मुनिको प्रसन्न करके पंचवटीमें जा स्थित हुये॥ वहांपर हत्यारी तृष्णारूपी शूर्पनखाको क्या सूझी कि जो उसने श्रीमहाराजकी परीक्षाकी। अर्थात्—तृष्णाने बिचार किया कि—रामचन्द्रजीको राज्यकी तृष्णा होजाय कि-राजादशरथजी की मृत्युका बिचार करके राज्यकी इच्छाके निमित्त अयोध्याजीको लौटजावें। ऐसा बिचार करके श्रीरामचन्द्रजी से कहती थी कि-आप मुझको बरलीजिये। अर्थात्-मुझ तृष्णाको धारण करो॥ ऐसा सुनकर लक्ष्मणजीने तृष्णारूपी शूर्पनखाकी नाक काट

दी । तबसे तृष्णानकटी है । अर्थात्—सन्मुख नहीं स्थित होती । क्योंकि-विचार कर तृष्णाकी ओर देखाजावे तौ तृष्णाभी बन्ध्या के पुत्रवत् मिथ्या है । तब फिर उस तृष्णाने दुःखी होकर अपने भाई मोहनरूप खरदूषणको भेजा कि उन्होंने मुझको तौ अंग भंग करदिया । परन्तु अब तुम जाओ तृष्णा नहीं हुई तौ मोहतौ अवश्यही होगा । अर्थात्—रामचन्द्रजी ऐसा विचार करके कि राजादशरथजीकी मृत्यु होने से हमारी माता भ्राता और प्रजा सब दुःखी होंगे उनकी रक्षा करना अवश्यही उचित है । इसी हेतु सेही अयोध्याजीको लौटजावें । ऐसासुनकर खरदूषणभी क्रोधित होके आया । तब श्रीरामचन्द्रजीने मोहरूप खरदूषणको भी नष्ट किया और फिर सूपनखाने अज्ञानरूप रावण से कहा । तब रावणने कामरूप मारीच राक्षसको समझाया कि तुम जाओ इनदोनों

बालकोंके साथ जो स्त्री है उसको हरलाओ मारीच बोला कि-यह बालक नहीं हैं यह तो साक्षात् जगदीश्वर सच्चिदानन्द हैं, क्योंकि एक समय यह विश्वामित्रजीके यज्ञमें आये थे वहां इन्होंने मुझ कामरूप मारीचको मुनिके हृदयमेंसे शब्दरूप एकही बाणसे निकालकर यहां फेंकदिया है तबसे मैं तो उनके प्रभावको जानता हूं और तुमभी ऐसा विचार मत करो ॥ फिर रावणने कहा कि अरे दुष्ट! तू मेराकहना नहीं करता तेरीबुद्धि भ्रष्ट होगई है ॥ मैं तुझे एकही गदासे मारडालूंगा । तब वोह कामरूप मारीच श्रीरामचन्द्रजीकेही चरणोंमें मरना[1] श्रेष्ठ समझकर कपट करके नामरूप मृग[2] बना ॥ जब सीताजीने उस मृगको देखा तब कहनेलगीं कि हे स्वामी! इस मृगका चर्म मेरे आसन

१--रामादपिच मर्त्तव्यं मर्त्तव्यं रावणादपि ।
उभयोर्यदि मर्त्तव्यं वरं रामो न रावणः ॥

२--सीता परम रुचिर मृग देखा । अंग२ सुमनोहर भेखा ॥

को चाहिये । फिर श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि यह मृग नहीं है अर्थात्-अपनी कामनाही नामरूप मृगहो प्रतीत होरही है।जैसे मृगकी प्यासही मरुस्थल भूमिमें जलरूप होकर भान होती है वास्तवमें वहां जल कुछ नहीं ॥ इसीप्रकार कामरूप मारीच मृगरूप हो प्रतीत होता है । ऐसा सुनकर सीताजी संकोचको प्राप्त हुई । तब अन्तर्यामी श्रीरामचन्द्रजी सीताजीके चित्तका भाव जानकर मृगके पीछे चले तभी शान्तिरूप सीताको अज्ञानरूप रावण हरके लेगया अर्थात्-जब कपटरूप मृग नामरूपको देखा तभी शान्ति जाती रही॥जब रावण सीताजीको लियेजाता था तभी मार्गमें धर्म्मरूप जटायु देखकर सीताजीकी रक्षाके निमित्त रावणसे युद्ध करने लगा । परन्तु दुष्ट अज्ञानरूप रावणने उस कोभी महादुःख दिया और सीताजी लेगया अर्थात् ज्ञानके बिना अज्ञानका कोईभी नाश

नहीं करसक्ता तबश्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी केसहित सीताजीका पताचलाते २ वहांआये कि-जहां धर्म्मरूपजटायु पड़ेहुयेथे वोह जटायु दर्शनकरके कृत कृत्यहुआ और चरणोंमें गिर पड़ा श्रीरामचन्द्रजीने जटायुसे कहा कि हम तुम्हारा शरीर अच्छा करेदेते हैं । तब जटायु ने कहा कि हे स्वामी! महात्मा लोग लाखों वर्षों तक तप किया करते हैं कि-मृत्युके समय श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण हो । उनको अति कठिनतासे ऐसा सुअवसर मिलता है । सो मुझको तो इस समय स्वाभाविकही प्राप्त है तो फिर मैं शरीररूप बोझको उठाये हुये क्यों फिरूं॥ मैं तो केवल आपके चरणारविंद की प्रीतिही चाहता हूं मुझे और कुछ नहीं चाहिये ॥ ऐसा कहकर फिर वह गृद्ध गदगद होके श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें लिपट गया और श्रीरामचन्द्रजीने भी उस धर्मरूप जटायु को अमर पद प्राप्त करके कहा कि जो पुरुष

मुमुक्षुज्ञानकी इच्छा करेंगे वह प्रथम तुमको अवश्य ही संपादन करेंगे और जहां धर्म्म नहीं वहां ज्ञानभी नहीं इसप्रकार अमर पद प्राप्तकरके आगे चलदिये कि-जहां एक प्रीतिरूप शिवरी रहतीथी अर्थात् उस शिवरीसे एक महात्माने कहा कि-तू इसी स्थानपर पड़ी रहना जिस समय श्रीरामचन्द्रजी आवेंगे तब तेराउद्धार होगा। वोह शिवरी महात्माके वाक्य पर दृढ़ विश्वास कियेहुये वहीं पड़ीर ही और बनसे बेरोंकोलाके चखर कर मीठेर श्रीरामचन्द्रजी के निमित्त रखतीजातीथी। और खट्टे २ आप खालेतीथी। और प्रेममें मग्न होकर झाड़ू लेके बहुतसी दूरतक मार्ग भी शुद्ध करआतीथी कि श्रीरामचन्द्रजी महाराज आवेंगे तौ उनके कांटे न लगें॥ और वहांके सब ऋषी मुनि जाति और तप के अभिमानमें आसक्तथे कि जो उसको महा-अशुद्ध जानतेथे। कि इतनेहीमें श्रीराम-

चन्द्रजी जाय पहुँचे तब वह शिवरी दूरही-से देखकर मुनिके वाक्यको स्मरण कर-के बेसुध होकर भागी और चरणोंमें गिरपडी। दीनबन्धु श्रीरामचन्द्रजीने उठाकर उसको हृदयसे लगालिया। और उसके स्थान पर गये। तब वोह सिवरी उन मीठेरबेर कि जो बहुतसे दिनोंके रक्खे हुए थे। श्रीरामचन्द्र जीके आगे रखके प्रेमसें मग्न होकर चरणोंमें गिरपड़ी। और श्रीरामचन्द्रजीभी बड़ी प्र-सन्नता पूर्वक उन झूंटे बेरोंको खाते और प्र-शंसा करते थे कि-हे लक्ष्मण! हमारीमाता कौशिल्याजी अनेक प्रकारके पदार्थ अपने हाथोंसे बना २ कर हमको खिलातींथीं परन्तु उनमें यह आनन्द नहीं था कि जो इस बेर-में है, हे भ्राता! विश्वामित्रजीके यज्ञमें ऋषि मुनि अपने हाथोंसे भोजन बना २ कर अति प्रेमपूर्वक हमको खिलाते थे। परन्तु जो स्वाद इस बेर में है वोह उस भोजनमें नहीं था, हे

प्राणप्रिय! राजा जनककी रानी अपने सुंदर हाथोंसे विविध प्रकारके व्यंजन प्रेममें मग्न हो२कर हमको परसतीथीं। परन्तुवोह सुख उस भोजनके पानेसे नहीं हुआथा कि-जो इस बेरसे हुआ है। हे प्रियवर! जानकीजी अपने कमलवत् हाथोंसे बनके फलफूलशुद्ध कर कर अतिश्रद्धासे भोजन करती थीं। परन्तु सो आनन्द उन फलोंमें नहींथा कि-जो इस बेरमें है हे नागेश! अनेक ऋषि मुनि और राजाओंने मेरे अर्पण यज्ञ किये। परन्तु ऐसा तृप्त मैं उन यज्ञोंसे नहीं हुआ कि जैसा इन बेरोंसे होता हूँ इसप्रकार अन्तर्यामी भक्तवत्सल श्रीरामचन्द्रजी उस प्रीतिकी प्रशंसा करतेहुए झूंटे बेरोंको पाते थे। और सिवरी तो ऐसी आनन्दमें डूबी उसको यही सुधनहीं रही कि हमारे स्थान पर कौन आयाहै। और मैं कौनहूँ। कहां हूँ। ऐसा देखकर श्रीरामचन्द्रजीने उसको

कण्ठसे लगालिया । तब वह सिवरी दोनों हाथ जोडकर स्तुति करनेलगी कि हेनाथ ! प्रथम तौ स्त्रीकी जातिही अधमसे भी अधम है । और दूसरे उसमें भी फिर मैं मतिमंद और वनमें रहनेवालीपशुकी समान प्रमाद के सिवाय आपकी भक्तिका लेशभी नहींहै। जिसमें सो मैं आपकी स्तुति कैसे करसकूं हे तरणतारण ! जो पुरुष स्त्री--पुत्र-धन-और विद्या-कुल-प्रतिष्ठा करके युक्तहैं । और आपके चरणोंकी प्रीति नहीं वोह पुरुष सूलीकेपुष्प की नाई शोभा नहींपाता हे स्वामी ! मैं तो धन—जाति—विद्या और आपकी भक्ति- इन सब कर के हीन हूँ ॥ सो आपने आ- ज मुझ पतितको कृतार्थ करदिया । भला ऐसी दयालुताकी स्तुति कौन करसकता है इसप्रकार कहकर फिर चरणोंमें गिरपडी । श्रीरामचन्द्रजीने उसकी पीठपर हाथ रख- कर कहा कि हे शिवरी ! तेरे वडेही भाग्य

हैं कि जो तेरा ऐसा प्रेम है। और जिस पदके अर्थ महात्मालोग योग-जप-तप करते रहते हैं। सो पद तुमको आज स्वाभाविकही प्राप्त हुआ॥ इसप्रकार कहकर श्रीरामचन्द्रजी महात्माओंको दर्शन देते हुये वनोंको पवित्र करते २ पम्पासरोवरपर जाय उपस्थित हुये॥ अर्थात्-गम्भीरतारूपी जल से जिसपुरुषका हृदय पूर्ण होरहा है और दैवी सम्पदा गुणरूप कमल प्रफुल्लित होरहे हैं जिस में। तिस पुरुषके हृदयका नाम पम्पसरोवर है। तिस पम्पासरोवर पर जिस समय श्रीरामचन्द्रजीने स्थान किया। तभी श्रीमहाराजके दर्शनाभिलाशी भगवत् कीर्तन करते हुये निष्कामकर्म्मरूप नारदजीभी आकर प्राप्त हुए श्रीरामचन्द्रजीने अतिप्रेम पूर्वक नारदजीको प्रणामकरके आसन दिया। तब नारदजीने प्रश्न किया कि-हे भगवन्! सब पदार्थोंसे श्रेष्ठ कौनसी वस्तु है॥ श्री-

रामचन्द्रजी बोले कि—भगवानके गुणानु-
वादका गान करना इससे अधिक और कोई-
भी पदार्थ नहीं,क्योंकि-योग,जप,तप करनेसे
तौ केवल अपनाही कल्याण होता है, और भ-
गवत्गुण कथन करनेसे अपना तौ कल्याण
होताही है। परन्तु समीपवर्त्ती पुरुष जो
कि-उस गुणको श्रवण करते हैं, उनकोभी
भगवानमें निष्ठा होनेसे तिनका भी कल्या-
ण होजाता है। इसकारणसे योग-जप-तप
से ईश्वर गुण कथनकी महिमा अधिक है।
ऐसा सुनकर नारदजी अति प्रसन्न हुए।
और कहने लगे कि—हे नाथ ! आपने मेरे
शापको स्वीकार करके वनमें विचरना तौ
श्रेष्ठ समझा। परन्तु मुझको स्त्रीकी प्राप्ति
नहीं होने दी इस में क्या कारण। तब श्री
रामचन्द्रजीने कहा कि-हे मुनिवर ! आपके
शापसे वनमें बिचरना कई प्रयोजनोंको
सिद्धकरता है। एकतौ यह है कि-आपके शा-

पको जो मैंने अंगीकार किया इससे महात्माओं से सम्पूर्ण पुरुष डरते रहेंगे। और डरनेसे दिन पर दिन उनमें श्रद्धा अधिक होगी और श्रद्धाही कल्याण होने में हेतु है। क्योंकि-वोह लोग यह विचार करेंगे कि-जब साक्षात् विष्णुकोही महात्माओंका शाप अंगीकार करना पड़ा ॥ तो फिर हमलोगोंकी क्या गती है? और दूसरे मेरे भक्तोंका जो वाक्य है सो मुझको अवश्यही स्वीकार करना पड़ता है। क्योंकि-भक्त तो स्वाधीन हैं। और मैं भक्तोंके आधीन हूँ ॥ इसकारण मेरा भक्त सत्य संकल्पसे मुझको जहाँ याद करता है मैं उस को वहीं मिलजाता हूं। और उनको दुःखदेनेवाले जो काम-क्रोध-दम्भ-कपटादि राक्षस तिनका नाश करना, क्योंकि-और सब वस्तुओंको मैं सहार लेता हूं। परन्तु मेरे भक्तोंको जो दुःखहोता है सो मुझसे नहीं सहाजाता, इस्से अज्ञानरूप रावणादि राक्षसों-

के नाश निमित्त मेरा वनमें विचरना है। और जो आपने यह कहा कि-मुझको स्त्रीकी प्राप्ति क्यों नहीं होनेदी? सो इसका कारण यह है कि-जिस पुरुषको मैं अपनी निर्मल भक्ति देता हूं उसके स्त्री-पुत्र-धन-प्रथमहीसे हरलेताहूं। क्योंकि-स्त्री पुत्र आदिकोंको प्राप्त होकर वोह मुझको भूलजाते हैं। इस्से मैंने आपको स्त्रीकी प्राप्ति नहीं होने दी। और स्त्री तौ दोषोंका घरहै वोह वस्तु आपके योग्य नहीं क्योंकि--आपतौ निष्काम हो ऐसा सुनकर निष्कामकर्मरूप नारदजी अतिहर्षित होते हुए मनही मनमें प्रणाम करके चल दिये॥

आरण्यकाण्डसमाप्त.

॥ अथ किष्किन्धाकाण्ड ॥

और श्री रामचन्द्रजीभी आनन्द पूर्वक बिलास करते हुये वहाँ पहुंचे कि-जहाँ लोभ रूप बालिसे भयभीत होकर सन्तोषरूप सुग्रीव सत्संगरूप हनुमानजीके सहित रहते थे, वोह इस परम विचित्र जोडी को देखकर आश्चर्ययुत हुए कि-ऐसे मनोहर स्वरूप तो हमने आजतक कभी देखेही नहीं। तब बाली के भयसे सुग्रीव तो वहाँ से नहीं उठे परन्तु हनुमानजीको भेजा । हनुमानजी दूरहीसे साष्टांग प्रणामकरके स्तुति करने लगे और फिर श्री रामचन्द्रजीको अपने स्थानपर ले-आये । तब परम कृपालु दीनबन्धु श्रीराम-चन्द्रजीने उनसे मित्रताकरी औरउस लोभ रूप बालीको नष्टकर सन्तोषरूप सुग्रीवको राज्य दिया । और लोभका पुत्रजो अक्रोध रूप अंगद है तिसको युबराज करके श्री-

रामचन्द्रजी शुद्धस्वरूप स्फटकशिलापर निवास करने लगे। अर्थात्—कर्म उपासना करके मलविक्षेप दोष दूर होगया है जिस पुरुषका तिस पुरुषके चित्तका नाम स्फटिक शिला है। तिसमें श्रीरामचन्द्रजीने निवास किया। उस समय चातुर्मास था। अर्थात्-वर्षासे वन प्रफुल्लित होरहे थे। और मोर चकोरादिक अनेकपक्षी बिबिधप्रकारके शब्द करते थे। और सरोवरभी अमृतरूप जल से पूर्ण होरहे थे। तिस शोभाको देखकर श्रीरामचन्द्रजी कहनेलगे कि-हे लक्ष्मण! जैसे वर्षा ऋतुमें यह सब वृक्ष और तृण प्रफुल्लित होरहे हैं इसी भांति अज्ञानी पुरुष के चित्तमें भोगरूपी जलसे अनेक प्रकार करके बासनाका पसार होता है॥ और जब ज्ञानरूप सूर्य्यउदयहोता है तब उसके तेज से सम्पूर्ण बासना दग्ध होजाती है। और जैसे यह जल आकाश से तो शुद्ध आता है।

और यहां आकर प्रथिवीके सम्बन्धसे म-
लिन होजाता है॥इसी प्रकार वस्तवमें जीव-
का स्वरूप शुद्ध है। परन्तु मायाके सम्बन्ध-
से मलिन होगया है। और जैसे सूर्य्य अ-
पने तेजसे जलकी मलिनताको दूर करके
जलको अपनेहीमें लय करलेता है। इसी
भांति ज्ञानरूप सूर्य्यके तेज से मायाकी नि-
वृत्ति होकर जीव अपने स्वरूपको प्राप्त हो-
जाता है॥ और दूसरे यह जल सूर्य्यहीसे
आया है। और यहां आकर अनेक स्थानों
में स्थित होगया है। और उसी एक सूर्य्य-
का सबमें आभास है॥ परन्तु वोही एक
आभास जलके भिन्न २ होने से अनेक आ-
भास प्रतीत होते हैं। वास्तव एकही है॥
इसी प्रकार ब्रह्मरूप सूर्य्यसे अविद्यारूप
जल आया है। और उस जलमें उसी चै-
तन्य ब्रह्मका जीवरूप आभास है सो तिस
अविद्याकी विचित्रतासे एक जीवके अनेक

प्रतीत होते हैं । जैसे इन सम्पूर्ण स्थानों के जल को सूर्य्य सुखालेता है । तब आकाश सूर्य्यसे भिन्न नहीं प्रतीत होता । इसी भांति अविद्याका नाश होने पर जीव ब्रह्मसे पृथक् नहीं है ॥ इसप्रकार चातुर्मासकी शोभाको वर्णन करते २ श्रीरामचन्द्रजी कहनेलगे कि हे लक्ष्मण ! यहसब रमणीक स्थान मुझको शान्तिरूपी सीताजीके बिना भयंकर प्रतीत होतेहैं । इस कारण कहीं सीता जीका पता चलाओ और देखो ॥ सन्तोष रूप सुग्रीवको भी राज्यमद होगया कि-उस ने हमारी सुधभी नहींली । तुम जाकर उस को बुलालाओ । तब विवेकरूप लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके सुग्रीवके पास गये । और वहांसे सन्तोषरूप सुग्रीव सत्संगरूप हनुमानसे आदिलेकर बहुतसे बन्दर श्रीरामचन्द्रजीके भयसे कांपते हुए

१–घन घमंड नभ गरजत घोरा । प्रिया हीन डरपत मन मोरा ॥

श्रीमहाराजके चरणोंमें आकर प्राप्तहुये । और प्रणामकर स्तुति करके प्रार्थना करने लगे कि हे नाथ ! जो आज्ञा हो सोई करें। हमारा तौ तन मन धन सब आपही के अर्पण है । कुछ आज्ञाकीजिये । श्रीराम-चन्द्रजीने कहा कि-कहीं से सीताजीकी सुध लाओ । तब वोहसब योधा श्रीरामचन्द्रजी को प्रणामकर और उनके स्वरूपको हृदय में धारणाकरके चलदिये । और सर्वत्र देखा परन्तु सीताजीका कहीं भी पता न पाया । फिर व्याकुल होकर समुद्रके किनारे गये । वहांपर तपपुंज नाम करके एक कन्या थी। उसने कहा कि-शान्तिरूप सीताजीको तौ अज्ञानरूपरावण लङ्कामें लेगया । तव वोह सब आगे चलदिये कि जहां धर्म्मरूप ज-टायुका भाई सतोगुणरूप सम्पाती स्थित था उससेभी येही पता चला कि शान्ति रूप सीताजीको अज्ञानरूप रावण लङ्के

देगया है । सो वोह रावण भ्रांतिरूप लङ्का-
का राजा है कि जिसके चारोंओर आशारूप
खाड़ी मनोरथरूप जलसे पूर्ण होरही है ॥
तिस स्थानमें जाना अतिदुस्तर है । और
जो कदाचित् चलाभी जाय तौ वहांसे आ-
नाही कठिन है । क्योंकि-वहां जाकर तौ निज
स्वरूपका बोधही नहीं रहता कि मैं कौन हूं
और कहांसे आयाहूं । तब फिर वहांके राग
द्वेषादि राक्षस मारकर खालेतेहैं । जो कोई
पुरुष वहांजाय उसको सीताजीके दर्शनहोयँ॥

किष्किन्धाकाण्ड समाप्त.
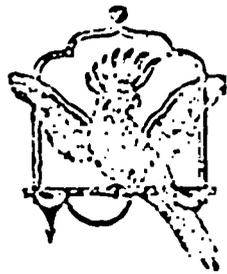
॥ अथ सुन्दरकाण्ड ॥

ऐसा सुनकर सब तो चित्तमें बिचारही करने लगे । कि इतनेहीमें सत्संगरूप हनुमान्‌जी श्रीरामचन्द्रजीको हृदय में धारण करके और अंगदादि सब बन्दरोंको प्रणाम कर आशारूप समुद्रको फाँद लङ्का में जाय प्राप्त हुए । और वहां सब स्थानोंमें खोज किया। परन्तु कहीं सीताजीका पतानहींपाया तब हनुमान्‌जी व्याकुल होकर क्या देखते हैं कि-एक बड़ा दिव्य स्थान है जहां सर्वत्र राम २ लिखा हुआ और बहुतही पवित्र स्थान तुलसीजीके वृक्षोंसे शोभायमान् होरहा था ऐसा बिहितकर्मरूप विभीषणका स्थान देखकर आनन्दित हुए । और उन से यह ज्ञात हुआ कि-शांतिरूपी सीता अशोक बाटिका में स्थित हैं । तब हनुमान्‌जी वहां पहुँचे । और प्रणाम करके श्रीरामचन्द्रजीके श्रीमुख

कावाक्यरूप मुद्रा दी अर्थात्--कहने लगे कि-हे माता! श्रीरामचन्द्रजीने कहाहै कि-सीताजी अपने चित्तमें कुछभी शोक नकरें क्योंकि मुझ ज्ञानस्वरूप रामचन्द्रके उदय होतेही अज्ञानरूप रावणका सर्वस्व नष्ट होजायगा-तभीतुम हमको प्राप्तहोओगी और वास्तवमें तो ज्ञानसे शान्तिका वियोगही नहीं होसक्ता। जैसे वस्त्रसे सुफेदी पृथक् नहीं है॥ इसीप्रकार मुझसे तुम भिन्न नहींहो। किन्तु एक लीलामात्रही अज्ञानरूप रावणके कारण पृथक् प्रतीत होती हो। वास्तवमें शान्तिऔर ज्ञान भिन्न नहीं है। इस प्रकार श्रवण करके सीताजी परमानन्दको प्राप्त हुई। अर्थात्-उस शब्दरूपी मुद्राको श्रीरामचन्द्रजीका प्राप्त होना ही समझा। और फिर सीताजीने श्रद्धारूप चूड़ामणिभी श्रीरामचन्द्रजीके वास्ते दी। तब महावीरजीने फलफूल खानेकी आज्ञा लेके सम्पूर्ण बाग़ नष्ट भ्रष्ट कर

छिये। और अनेकानेक राक्षसभी नाश किये जब अज्ञानरूप रावणने सुना। तव रागरूप मेघनादको भेजा वोह हनुमानूजी को पकड़ कर लेगया अर्थात्-उसमायारूपी लंकाकीशो भादेख हनुमान्‌जी रागको प्राप्तहुये जबकुछ कालपश्चात् सत्वगुणरूप सम्पातीकेवाक्यका स्मरण किया तभी भ्रान्तीरूप लंकाको दा-हकर श्रीरामचंद्रजीके चरणोंमें आकर प्राप्त हुये। और प्रणाम करके कहने लगे कि-हे-स्वामी जिस पर आपके चरणोंकी कृपा हो-जावे सो पुरुष क्या नहीं करसक्ता। अर्थात्-सब कुछ करनेको समर्थ है॥ मैंने तौ आप-की आज्ञा नहीं पाईथी नहीं तौ अज्ञानरूप रावणके सहित सम्पूर्ण राक्षसोंको नाशकर माता जानकीजीको लेकर आपके दर्शन कर ता। ऐसा सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने हनुमान् जीको कण्ठ से लगा लिया और बहुत प्रसन्न हुये। और जिस समय हनुमानजीने सीता-

जीकी श्रद्धारूपी चूडामणि दी। तब श्रीराम चन्द्रजीने अतिहर्षित होकर चूडामणि हृदय-से लगाली। और पूछा कि सीताजी आनंद तो हैं। हनुमानजीने कहा कि हे नाथ आपके बियोग से उनका शरीर अतिही दुर्बल हो गया है॥ ऐसा सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने सम्पूर्ण सेनाके सहित लंकाको चढ़ाई करदी॥ और समुद्र तटपर जाय स्थित हुये तभी विहितकर्मरूप विभीषण अज्ञानरूप रावण को समझाने लगे कि–देखो रामचन्द्रजी मनुष्य नहीं हैं। वोह तो साक्षात् परब्रह्म हैं। तुम उनसे शत्रुता मत करो अब वोह समुद्र के तटपर आगये हैं। सम्पूर्ण लंकाको नष्ट कर देंगे। इसवास्ते तुम सीताजीको लेकर अहंकारको त्याग उनकी शरण जाओ॥ इस प्रकार विभीषणने बहुतही समझाया। परन्तु उसने एक नहीं माना। और उलटा तिरस्कारकरके विभीषणको लंकामेंसेनिकाल

दिया। तब विभीषण श्रीरामचन्द्रजीकेचरणों में आय प्राप्त हुए । और श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणको लंकापति कहा । अर्थात्-लंका का राज्य देदिया ॥

सुन्दरकाण्ड समाप्त.

॥ अथ लंकाकाण्ड ॥

तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीने गुरूरूप रामेश्वरका पूजन किया । और यह कहा कि जो पुरुष श्रीगुरूके चरणोंका पूजन सेवन करेगा वोह पुरुष आशारूपी समुद्रसेपार होकर अज्ञानरूप रावणको नष्ट करेगा । ऐसा कहकर आशारूप समुद्रका अपनी लीलारूप पुल बाँधा, अर्थात्—आशा रूप समुद्रसे पारहोनेका पुल श्रीरामचन्द्रजी की लीलाहै । इस लीलाको जो कोईभी स्मरण और धारण करेगा वोह पुरुष पार होगा। उधर मतिरूप मंदोदरीनेभी अज्ञानरूप रावणको बहुतही उपदेश किया कि हे स्वामी! इनको राजाके पुत्र मतसमझो यह तौ साक्षात् परमात्मा हैं । देखो इन्हीं सीताजीके वास्ते आपभी तौ जनकपुर में गयेथे, परन्तु आप से धनुष नहीं टूटा। औरइनके प्रकाशमात्रही

से अहंकाररूप धनुष क्षीण होगया । इस वास्ते मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि-आप इनसे विरोध न करें सीताजीको लेकर उनकी शरण जाओ ॥ तब रावणने कहा कि तू तौ स्त्रीहै स्त्रियोंकीसी तुच्छ वार्ता करतीहै।ऐसा कहकर रावणने उसकाभी तिरस्कारकरदिया और इधर इसप्रकार आनंदपूर्वक विलास करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी लंकाके समीप जाय पहुंचे । तब मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचंद्र जीने धर्मानुसार रावणको एक पत्र लिखकर अक्रोधरूप अंगदको भेजा तबभी वोह दुष्ट रावण अहंकार युक्तही बोला । फिर अंगदजी ने भी बहुतही समझाया कि देखो बहां का एक निकालाहुआ बन्दर आयाथा कि-जिस ने सब लंका दाह करदी । और वोह श्रीम-हाराजके भयसे वहां पहुँचाभी नहीं सो देखो तुम उनसे बैर मतकरो वोह तौ प्रकाशरूप हैं जिनके नाममात्रहीसे पत्थरकी शिला स-

मुद्रमें तैरगई तिनसे बैर करके फिर सहारा-
ही किसकाहै? ऐसा सुनकरभी उसने अनेक
कुतर्कें करीं तब अक्रोधरूप अंगदने सभामें
अपना पैर गाड़कर कहा कि—मैं उनके शूर-
बीरोंका सेवक हूं मेराही पैर किसीसेभी नहीं
उठेगा। तिस समय रावणकी आज्ञानुसार
बहुतसे राक्षसोंने अंगदजीका चरण उठाया
परन्तु संपूर्ण राक्षस हारगये और पैर किसीसे
भी चलायमान नहीं हुआ। जब क्रोधित हो-
कर रावण उठा तब अंगदने पैर उठाकर
हँसके कहा कि-अरे मतिमंद! श्रीरामचंद्रजी
के चरणोंमें पड़ कि-जिससे कल्याण हो।
वोह रावण लज्जित होगया। तब अंगद-
जीभी चलेआये। फिर श्रीरामचन्द्रजीकी
आज्ञानुसार बनचरोंने राक्षसोंका बिध्वंस
करना आरम्भ किया॥ तिस समय रावण-
ने रागरूप मेघनादको भेजा तिस रागरूप
मेघनादकी आसक्तारूप शक्तिसे बिवेक

रूप लक्ष्मणजी मूर्छित होगये ॥ और तिस समय रात्रीभी होगई थी । तब श्रीरामचन्द्र-जीकी सब सेनामें हाहाकार मचगया । फिर विभीषणने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा कि—हे नाथ ! लंकामें अनुरागरूप सुषेण एक वैद्य हैं, वोह आवें तौ लक्ष्मणजीकी मूर्छा निवृत्त हो ॥ तब सत्संगरूप हनुमानजी अनुरागरूप सुषेण वैद्यकोभी लेआये । सो विषयानुराग जो सुषेण थे वोह श्रीराम चन्द्रजीके पवित्र दर्शनोंसे अतिही भगव-तानुरागी होगये ॥ तब सुषेण वैद्यने कहा कि हे प्रभो! आप कुछभी चिन्ता न कीजिये लक्ष्मणजीकी मृत्यु नहीं हुई । किन्तु मूर्छा होगई है । अर्थात्-विवेकी पुरुषको अनात्मा पदार्थोंमें कदाचित् राग होजावे तौ उसकी आसक्ततासे तिसका विवेक मूर्छित होजाता है परन्तु नष्ट नहीं होता । और फिर जब निज स्वरूपकी स्मृति होती है तभी मोह

दूर होजाता है । इसी प्रकार रागरूप मेघ-नादजीकी आसक्तारूप शक्तिसे बिवेकरूप लक्ष्मणजी मूर्छित होगये हैं ॥ परन्तु सत्शास्त्ररूप द्रोणागिर एक पर्वत है, तिसमें स्मृतिरूप सञ्जीवन औषधी है। सो लक्ष्मण जीको मिले तब यह निज स्वरूपको प्राप्त होजायँ। इसप्रकार सुनके श्रीरामचन्द्रजीने दृष्टि उठाकर देखा तौ सत्संगरूप हनुमानजी प्रणामकरके चलदिये । और मार्गमें कपटरूप कालनेमिआदि अनेक राक्षसोंका विध्वंस करके द्रोणागिरि पर पहुंचे । वहां देखें तो शास्त्ररूप द्रोणागिर में सम्पूर्ण वाक्यरूप औषधियें निज स्वरूप की स्मृती करानेवाली हैं । इसकारण वोह पर्वत कोही उठाकर लेआये। जब अयोध्या जीके ऊपर आय पहुंचे तव भरतजीने कोई राक्षस जानकर बाण मारा । उस बाणसे वोह श्रीराम श्रीराम करते हुये गिरपड़े ।

श्रीराम शब्द को सुनकर भरतजीने भय-भीत होकर पूछा कि—तुम कौन हो? जब सब वृतान्त सुना। तब बहुतही दुखी हुये और कहा कि-जो तुमको चलनेकी शक्ति नहीं रहीहो तौ तुम मेरे बाणपर बैठो मैं पहुँचाये देता हूं। अर्थात् मुभ्फ वैराग्यरूप भरतके वाण विना तुम सत्संग और शास्त्र के वाक्यरूप औषधी विवेकरूप लक्ष्मणकी मूर्छाको निवृत्त नहीं करसक्के। क्योंकि-जिस पदार्थकी आसक्ततासे विवेक मूर्छित होता है। तिस पदार्थके वैराग्य बिन मोह निवृत्त नहीं होता। ऐसा सुनकर हनुमानजी हर्षित हो कहने लगे कि-हे स्वामी! आपके चरणों की कृपासे केवल मैं सत्संगही सब कार्योंको साधा करसक्ताहूँ, क्योंकि-जहां सत्संगरूप मैं आपका दासहूँ वहां आप ज्ञानवैराग्यादि संपूर्ण स्वयंही आकेप्राप्त होंगे। इसभांति कहके प्रणामकर हनुमानजी वहांसे चलदिये और

आनकर श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम किया॥ जब विवेकरूप लक्ष्मणजीको निज स्वरूपकी स्मृति हुई तभी मोह दूर होगया। और उठकर श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार किया। श्री रामचन्द्रजी हृदयसे लगाकर अतिआनन्दित हुए। और श्रीरामचन्द्रजीकी सेनामेंभी आनन्द मंगल होनेलगा॥ इसप्रकार वार्ता जब रावणने सुनी कि लक्ष्मणजीफिर सावधान होगये तब अतिशोकको प्राप्तहुए और फिर रावणने क्रोधरूप कुम्भकरणको जगाया। उस समय कुम्भकरणनेभी बहुत ही समुझाया कि हे भ्राता! इनसे बैर करना अच्छा नहींहै देखो लोभरूप बालिसे तुम अधिकबली नहींहो। उसको उन्होंने एकहीबाण से मारदिया॥ तब रावण बोला कि मेरी किसी प्रकारसे भी हानि नहीं क्योंकि जो यह ईश्वर हैं तौ मेरा कल्याण होजायगा। और जो यह मनुष्य हैं तौ मुझको जीत नहीं सक्ते। परन्तु

तुम्हारेभी बलका निश्चय होगया कि-तुम का-यर हो । केवल खानेमात्रहीकी तुम्हारी शूरवीरता है । ऐसासुनकर कुम्भकरण अपने क्रोध स्वरूप को धारण करके युद्ध स्थान में आये । जब श्रीरामचन्द्रजी महाराज सिंहकी नाईं गरजे । तब कुम्भकरण बोला कि—तुम क्या गर्जते हो तुमको तौ मैंने प्रथमही से जीत लिया अर्थात्—मुझे क्रोध करके ही तौ तुमने तुच्छ स्त्रीके पीछे अनेक जीओं की हिंसाकरी । और क्षत्री होकर किंचित् भी दया नहीं लाये । श्रीरामचन्द्र जीने कहा कि-अरे दुष्ट तू क्या बकता है जरा बुद्धिको तौ सावधान कर । अरे जिस स्त्रीका तू नाम लेताहै वोह तौ मेरी शक्ति है उस को कौन हरसक्ता है । उसी शक्तिसे तौ मैं अब ज़राही देरीमें तेरा सर्वस्व नष्ट करे देता हूँ । और जो तू यह कहता है कि मुझे क्रोध करके तुमने जीवों की हिंसा करी । सोयह क्रोध

और हिंसा नहीं है किन्तु दया है। क्योंकि-जिस एक पुरुष करके अनेक सज्जन पुरुष दुःख पातेहों। और उसके नाशसे उनको सुखहो तो उस एकका नष्ट करदेनाही श्रेष्ठ है। और दूसरे मुख्य ज्ञानस्वरूप रामचन्द्र का तो यह स्वभावही है कि काम क्रोधादि दुष्टों का वधकर सज्जनों की रक्षाकरना। इस प्रकार शांतवाक्य रूप बाण श्रीरामचन्द्र जीने जिससमय मारा तभी क्रोध रूप कुम्भकरणभी नष्ट होगया। क्योंकि-ज्ञान के सन्मुख क्रोधादि कैसे स्थित होसक्तेहैं॥ इस भांत जब रावणनेदेखा कि कुम्भकरण और खरदूषण जैसे शूरवीर जिन्हों ने मारदिये हैं यह अवश्यही साक्षात् ईश्वर हैं। क्योंकि मनुष्य की तो किसी की भी इतनी शक्ति नहीं दीखती कि जो इनको मारे। ऐसा विचार करके रावण शोक के समुद्र में गोतखा रहे थे कि इतनेही में रागरूप मेघनाद भी आय

प्राप्त हुये । मेघनाद बोले क्यों क्यों २ ऐसे शोकका क्याकारण है । भला यह छोटे २ से लड़के क्या करसक्ते हैं । अब आप जरा मेरा तो खेल देखिये । ऐसा कहकर मेघनाद रणमें आये । तब विवेक रूप लक्षमण जी ने रागरूप मेघनादको भी एकही बाणसे नष्ट करदिया और रतिरूप सिलोचना भी रागरूप मेघनादके साथ सती होगई ॥ तिस समय लंकामें हाहाकार होनेलगा । और रावणादि बचेबचाये राक्षस सब कांपने लगे । जब रावणने शोकातुर होकर आकर्षण मंत्र जपके द्वेषरूप अहिरावणको बुलाया । और सबहाल सुनाकर कहा कि उनकेनाशकीयुक्ति आपकुछ कीजिये । तब द्वेषरूप अहिरावण श्रीराम-चन्द्रजीको लक्ष्मणजीके सहित छलकर ले-गया ॥ अर्थात् उस समय किसी २ मतिमंद पुरुषके चित्तमें ऐसा बिचारहुआ कि श्रीराम चन्द्रजीको राक्षसोंसे द्वेषहै परंतु वास्तव में

द्वेष नहीं था फिर सत्संगरूप हनुमान्‌जीने द्वेषरूप अहिरावणको मारा और अपने पुत्र निर्लोभरूप मकरध्वजको राज्य देकर श्री-रामचन्द्रजीको लक्ष्मणजीके सहित लेआये। जब रावणने सम्पूर्ण राक्षसोंको नष्ट होतेहुये देखा तब मृत्युके प्रेरेहुए अपनेआपबड़ेवेगसे गर्जते २ वोह अज्ञानरूप रावण ज्ञानस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीके सन्मुख आकर स्थित हुये। और इसप्रकार युद्ध होनेलगा । रावणबोला अरे बालको! मेरे मारनेका जो तुम्हारे चित्त-में संकल्प है सो अब तुम उसको उठारक्खो क्योंकि-मेरा मारनेवाला तौ कोई भी आज-तक उत्पन्न नहीं हुआ। और जिसदिन मुझ अज्ञानकानाश होजायगा।उसदिन तुम भी न होगे। और यह सम्पूर्ण दृश्यभी कुछ न होगा क्योंकि-इन सबका कारण तौ मैं अज्ञान हूं। तौ फिर मेरे नाश होनेसे यह कैसे रहसक्तेहैं? बस अब अपना भला चाहते तौ उलटे पैरों

घरको लौटजाओ । बालकभी कहीं रणमें विजय पातेहैं । श्रीरामचन्द्रजी बोले अरे! जरा नेत्र तौ खोल ! दृश्य है कहां कि-जिसका नाश अपने नाशहोनेसे समझताहै । और जिसके होनेसे अपना होना मानता है अरे ! जो पुरुष घटकी रक्षासे आकाशकीरक्षा और आकाशकी रक्षासे घटकी रक्षा समझताहै। वोह पुरुष महामूर्खहै ॥ दृश्यहै कहां दृश्य तो कुछ भी वस्तु नहीं । क्योंकि-जो वस्तु आदि और अन्तमें नहीं है । वोहवस्तु मध्य में क्याहै ? अर्थात्-मध्यमें भी कुछ नहीं । जैसे मृगतृष्णाका जल अनहुआ हुआसा प्रतीत होताहै इसी प्रकार दृश्य वन्ध्याके पुत्रवत् मिथ्या है । वास्तवमें कुछ नहीं है ॥ ऐसा सुनकर अज्ञानरूप रावण कहने लगा । बस अबतुम अपने धनुषबाण मुझकोदेकर घरको चलेजाओ तुम्हारा सब वृत्तान्त ज्ञातहोगया कि-तुम शस्त्रविद्याको तौ जानतेही नहीं हो,

क्योंकि-अभी माताके पाससे आयेहो और बालक हो। परन्तु वेदकोभी नहींसमझते। क्योंकि-जो वेदको जान्तेहोते तो ऐसानहीं कहते कि-संसार शशशृंगवत् मिथ्याहै क्योंकि-वेदमें ऐसे२अनेक वाक्य संसारको सत्य प्रतिपादन करते हैं(अक्षय्यं हवै चातुरमासस्य याजिनः सुकृतं भवति अपामसोममसृतं अभूम) अर्थ—चातुर्मास यज्ञ करनेवाला पुरुष अक्षयपुण्यको प्राप्त होता है और सोमवल्लीका पान करनेवाला पुरुष अमृतस्वरूप होजाताहै।इसप्रकार वेदके अनेकवाक्य कर्मों से प्राप्त होनेवाले स्वर्गादिकोंको अक्षय अर्थात्-नित्यप्रतिपादन करतेहैं। तो फिर तुम संसारको मिथ्या कैसे कहते हो श्रीरामचंदजी ने जब ऐसा सुना तब श्रीमहाराज दोनोंहाथों से ताली पीटकर बहुतही हँसे कि-वाह आपकी भली समझ है। आपने वेदार्थको यथार्थ ही जाना है, कि—जो अर्थसे अनर्थ करते

हो जरा समझो तो सही इस श्रुतिका यह तात्पर्य नहींहै कि-कर्मोंका फल स्वर्गादिक भोग नित्यहैं। और जो कदाचित् यही तात्पर्य हो तातो वहींपर ऐसा न कहते (यथेह कर्म्म चितो लोकः क्षीयते तथा मुत्र पुण्य चितो लोकः क्षीयते) अर्थ—जैसे इस लोक के पदार्थ स्त्री पुत्र धन गृह आदिक पुरुषार्थसे प्राप्त होनेवाले नष्ट होजाते हैं। इसी प्रकार पुण्योंकाफल जो स्वर्गआदिक सोभीनाशवान् हैं। जो वहाँ श्रुतिका तात्पर्य दृश्यको सत्य कहनेसे होता तो यहाँ असत्य क्यों कहा। इस्से प्रत्यक्ष प्रतीत होताहै कि-वहां पर श्रुतिका भाव कुछऔरही है कि-जो आपने नहीं जाना सोयहहै कि-वेदमें सकाम कर्म्मोंके करनेको श्रेष्ठनहींसमझा क्योंकि-वेदमें कर्म्मोंके फल स्वर्गादिकोंको अनित्य कहाहै अर्थात्-वेदकी यह आज्ञाहै (परीक्ष्यलोकान् कर्म्म चितान् ब्राह्मणोनिर्वेद मायात् तद्विज्ञानार्थं सद्गुरु

मेवा भिगच्छेत् श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्) अर्थ-कर्म्मोंसे प्राप्त होनेवाली स्वर्गादि लोकों की परीक्षा करके अर्थात्-मिथ्या जानकर ब्रह्म को जाननेकी इच्छावाला पुरुष वैराग्य को प्राप्त होकर श्रीगुरूके चरणोंमें जावे (समित्पाणि) अर्थात्-हाथोंमें दातुनआदि काष्ठ लेकर जावे । गुरू भी वेदशास्त्रके ज्ञाता और धारणावाले होने चाहिये । ऐसी वेद की आज्ञासे प्रत्यक्ष प्रतीत होताहै कि-नित्य ईश्वरकी इच्छा करो । अनित्य संसारकी इच्छा मतकरो । और सत्यकी इच्छा वोहहै कि-जो संसारसे विरक्त होकर निष्काम कर्म करना । और निष्काम कर्म्मोंका फल ज्ञान है सो ज्ञान नित्य है अर्थात्-श्रुतिका यह भावहै कि निष्काम कर्म्म करनेवाला पुरुष अक्षय पुण्यरूप ज्ञानको प्राप्त होता है, सो ज्ञानस्वरूप मैं रामचन्द्र हूँ । अर्थात्-शुद्ध ज्ञानस्वरूप रामचन्द्रकोही वेदअक्षय प्रति-

पादन करताहै । और तुम मिथ्याहो।क्योंकि-
तुम्हारा तो नामही अज्ञानहै । अज्ञाननाम
अन्धकारका है । तौ भला फिर तुम अंध-
कार अज्ञानरूप रावण मुझ ज्ञानस्वरूप
रामचन्द्र सूर्य्यकुलसूर्य्यके सन्मुख कैसे स्थित
होसक्तेहो ?। और वास्तवमें तौ तुम अज्ञान
भी शश सृंगकी नाईं मिथ्या हो। क्योंकि-
जो वस्तु आदि में है । और वही अन्तमेंहै
तौ फिर बीचमें कोई दूसरी वस्तु नहीं हुई
अर्थात्-मध्यमें भी वहीहै । इसीप्रकार आदि
में भी एक ज्ञानस्वरूप मैं रामचन्द्रहूँ।और
अन्त में भी मैंही हूँ । तौ फिर मध्यमें कोई
दूसरा पदार्थ नहीं होसक्ता । मध्यमें भी मैंही
ज्ञानस्वरूप रामचन्द्र हूँ । तुम अज्ञान तौ
कभी हुयेही नहीं। गर्जते क्याहो?और दूसरे
तुम्हारी इस चेष्टापर मुझको बहुतही हँसी
आतीहै । कि वेद और शास्त्रके ज्ञाता भी
बनते हो और अज्ञानियोंकीसी धारणा है।।

अर्थात्-एकको अनेक देखते हो । देखो वेद-
की क्या आज्ञाहै(मृतु सः मृतुमाप्नोति यः इह
नात्रेव पश्यति) अर्थात्-जो इस एक आत्मा
को नाना देखता है सो पुरुष मुरदेसे भी
मुरदाहै अर्थात्-हुआही नहीं सो एकमें अ-
नेक दृष्टि तुम्हारीहीहै । इससे तुम मुरदे से
भी मुरदा हो गर्जताकौन है तुम्हारा होनाही
सिद्ध नहींहै गर्जना क्या होगा ॥ इसप्रकार
ज्ञानस्वरूप रामचन्द्रजीके वाक्यरूपबाणोंसे
अज्ञानरूप रावण भी नष्ट होगया ॥ और
देवता पुष्पोंकी वर्षा करते हुए श्रीमहाराज
रामचन्द्रजी की जय हो जय हो जय हो
कहने लगे ॥ और सर्व सेना अतिहर्षित
हुई ॥ जब अज्ञानरूप रावण नष्ट हुआ तभी
ज्ञानस्वरूप रामचन्द्रजीको शान्तिरूपिणी
सीता प्राप्त होगई । शान्तिके प्राप्त होनेका
सुख अकथनीयहै अर्थात्-वोही पुरुष जानता
है कि जो शान्त होताहै ॥ इस प्रकार आनंद

पूर्वक बिलास करते हुये श्रीरामचन्द्रजीने अज्ञानरूप रावणको नाशकर बिभीषण को राज्य देके। सब ऋषिमुनियोंको निर्भय पद प्राप्त करके शान्तिरूपिणी सीताजीके सहित अयोध्याजीको गमन किया ॥

लंकाकाण्ड समाप्त.
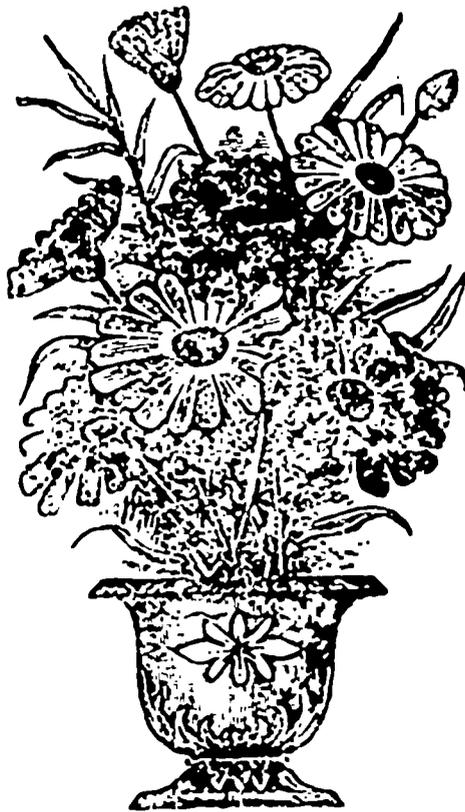
॥ अथ उत्तरकाण्ड ॥
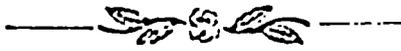
तब थोड़ीसी दूरसे सत्संगरूप हनुमानजीको वैराग्यरूप भरतजीके पास भेजा। जब भरतजीने श्रीमहाराजका आगमन सुना तभी प्रेममें मग्न होकर श्रीरामचन्द्र-जीकी ओर अवधपुरवासियोंके सहित इस प्रकार चले कि--जैसे रंकोंका झुण्ड मणियों के ढेरको लूटने जाता है। इस भांति गद् गद् कंठ होकर श्रीरामचन्द्रजीके चरणों में गिरपड़े तब श्रीरामचन्द्रजीने भरतजीको उठाकर हृदयसे लगालिया। और यथा योग्य सब ो मिले। उस समय वैराग्यरूप भरतजी ज्ञानस्वरूप रामचन्द्रजीके मिलनेका-जो सुख हुआ है। सो मन और वाणीका अविषय है। फिर श्रीरामचन्द्रजी रणवास-में आकर सब माताओंको प्रणाम करते और मिलते हुये। और बनकी सम्पूर्ण कथा अति

हर्षके साथ कह २ कर सबको आ
ते थे ॥ इस प्रकार आनन्द स्वरू
देखकर भेदरूप बसिष्ठजीने वि
कि-यह अयोध्या बहुत दिनोंसे
रही, थी सो अब शुद्ध सच्चिदान
परमात्माकी कृपासे आज सन
इस आनन्दका फल यही होना
ज्ञानस्वरूप रामचन्द्रजीको
सीताजीके सहित राज्य तिलक
ऐसा विचार करके वैराग्यरूप
निवृत्तिरूप कौशिल्या आदिसे
कहा । तब सबने मिलके श्रीर
से प्रार्थना करी । श्रीरामचन्द्रज
और माताकी आज्ञा माननाही
समझ कर स्वीकार किया । तब
भिषेकके निमित्त अनेक प्रकार
इकट्ठी होने लगी ॥ जिस सम
राज ज्ञानस्वरूप रामचन्द्रजी श

सीताजीके सहित विज्ञानस्वरूप सिंहासन पर स्थित हुये। कि-जिस सिंहासनके ऊपर अटलरूप छत्रशोभायमान होरहाहै। और विवेकरूप लक्ष्मणजी हाथमें पंखा लियेहुये मन्द २ शीतल पवन कर रहे हैं। और वैराग्यरूप भरतजी हाथमें चवँर लिये हुये हैं। और विचाररूप शत्रुघ्नजी करमें मोरछल लिये हुये सुशोभित हैं। और सत्संगरूप हनुमानजीभी सिंहासनके दहिने पायेंकी ओर स्थित हैं। और सन्तोषरूप सुग्रीव अक्रोधरूप अंगद। विहितकर्म्मरूप विभीषण। इत्यादि अनेक बड़े २ योधा सिंहासन के बाईं ओर श्रीमहाराजकी सेनामें स्थित हैं। और निवृत्तिरूप कौशिल्या। भक्तिरूप सुमित्रा आदि रानियेंभी अति हर्षको प्राप्त होरही हैं। और विश्वासरूप विश्वामित्रजी से आदि लेकर बहुतसे महर्षि सिंहासन के सन्मुख स्थित हैं। और वेदरूप वसि-

छुजी श्रीमहाराजको तिलक देरहे हैं
विष्णु आदि देवता पुष्पोंकी वर्षा कर
और जय २ शब्द होरहा है तिस
एक ओर पड़ा हुआ उस कल्याण क
द्भुत शोभाको निरख २ । सत् । चि
समुद्र अपने आत्मामें शंकरानन्द
लगा रहाथा ॥ इस दयालुताको देख
आनन्द प्राप्त हुआ कि-आगे कुछ क
नहीं गया बस चुपही होना पड़ा ॥

इतिश्रीयुतपरमहंसोदासीनशिरोवन्तश्री
स्वामीकेशवानन्दजीमहाराजकेशिष्यश्री
प्रकाशानन्दजीमहाराज तिनके पदपं
वी स्वामीशंकरानंदजीकी निर्मितव
आत्मरामायण समाप्तः